अच्छी शिक्षा

रमा कान्त अग्निहोत्री

वैसे तो 'अच्छी शिक्षा' कहना अपने आप में एक विसंगति है। शिक्षा अच्छी ना हो तो फिर कैसी हो? वास्तविकता तो यह है कि हम शिक्षा से अपेक्षित व्यक्ति व समाज की रचना करने में विफल रहे हैं। इसलिए अच्छी शिक्षा का सवाल बार–बार सामने आता है।

शायद किसी भी व्यक्ति या समाज के जीवन में शिक्षा एक छोटा सा प्रयास ही हो सकता है। हर व्यक्ति कई तरह से बेबस होता है, शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक तौर पर। यदि मैं दृष्टिहीन हूं तो शायद मुझे बदलते रंगों का एहसास कराना कोई आसान काम नहीं। इसी तरह यदि मुझे संगीत या नृत्य में रुचि नहीं है, तो शायद शिक्षा के लिए इस तरह की रुचि पैदा करना काफी कठिन काम है, जबकि इसमें कोई शक नहीं कि व्यक्ति व समाज के संपूर्ण विकास के लिए अच्छी शिक्षा का कला में रुचि पैदा करना एक आवश्यक उद्देश्य होना चाहिए। इसी तरह मेरे परिवार की सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक परंपराओं का मेरे व्यक्तित्व पर काफी गहरा असर होता है। हर समाज भी अपने इतिहास व अपने वर्तमान से बंधा रहता है। अच्छी शिक्षा की शायद सबसे सरल परिभाषा यही है कि वह ऐसे व्यक्तिओं और समाज के निर्माण में योगदान दे जो अच्छे हों। यह परिभाषा जितनी सरल दिखती है उतनी सरल है नहीं। व्यक्ति, समाज व शिक्षा तीनों के ही संदर्भ में 'अच्छे' को परिभाषित करना काफी मुश्किल काम है।

इस परिभाषा की जटिलता इस बात से भी स्पष्ट है कि समय–समय पर यह सवाल बार–बार पूछा जाता है कि अच्छी शिक्षा क्या है। एक धरातल पर तो इस शाश्वत प्रश्न का उत्तर शाश्वत ही है। अच्छी शिक्षा वह है जो जिम्मेदार व अच्छे नागरिक बनाए और अच्छे समाज का निर्माण करे। यह सवाल बार–बार इसलिए पूछा जाता है क्योंकि सामाजिक, राजनीतिक, तकनीकी परिस्थितियां निरंतर बदलती रहती हैं। शिक्षा कैसी हो उसमें विद्यार्थी, अध्यापक एवं पठन सामग्री आदि की क्या भूमिका हो, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हमारी समाज की छवि कैसी है। यदि हमारी छवि राजा और प्रजा जैसे समाज की है तो शिक्षा एक तरह की होगी; शायद अधिकतर लोगों को शिक्षा हासिल ही नहीं होगी और इसकी कोई विशेष आवश्यकता ही नहीं समझी जाएगी। यदि समाज की परिकल्पना साम्यवादी है तो शिक्षा दूसरी तरह की होगी; शायद सबको शिक्षा मिले लेकिन एक ही तरह की। यदि हम प्रजातांत्रिक समाज की परिकल्पना करते हैं तो शिक्षा का स्वरूप कुछ अलग ही होगा।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी परिस्थितियों के अनुसार भी शिक्षा के बारे में हमारी छवि बदलती रहेगी। आधुनिक युग में कंप्यूटर, इंटरनेट व मोबाइल आदि के आने की वजह से एक सैलाब सा आ गया है। एक वास्तविक कक्षा की अपेक्षा जहां एक अध्यापक व विद्यार्थी आमने–सामने होते थे, 'वर्चुअल कक्षा' एक वास्तविकता बनती जा रही है। एक समय था कि पहाड़े याद करना, वर्णमाला, छोटी कहानियां व कविताएं कंठस्थ करना, विभिन्न देशों की राजधानियों के नाम रटना या गणित में इस

तरह के सवाल निकालना कि 50 वर्ष पूर्व आज के दिन क्या तिथि व दिन रहा होगा, आवश्यक माने जाते थे। आज के युग में इन सब बातों के उत्तर पल भर में गूगल पर मिल जाते हैं। शिक्षा की परिकल्पना में इतनी विविधता होने के बावजूद भी, शायद इस बात पर प्राचीन काल से कभी प्रश्न चिह्न नहीं लगाया कि शिक्षा का उद्देश्य सृजनात्मकता को बढ़ावा देना है और इस तरह की चुनौतियां बच्चों के सामने रखना है जिनसे वे निरंतर नए–नए प्रश्न पूछते रहें और नए ज्ञान की रचना करते रहें। परेशानी की बात यह है कि यदि यह बात स्पष्ट है तो हमारे प्रयास भारत में ही नहीं बल्कि संसार भर में विफल क्यों रहते हैं।

शायद इसका एक मुख्य कारण यह है कि हमारा ध्यान शिक्षा के उद्देश्यों व नैतिक प्रश्नों पर केंद्रित नहीं रहता। हम रटने की प्रक्रिया से दूर होते हैं तो गतिविधि आधारित शिक्षा की बात करने लग जाते हैं और हम सब लोगों का, चाहे वे पाठ्यक्रम बनाने वाले हों या किताब बनाने वाले या फिर कक्षा में पढ़ाने वाले अध्यापक, ध्यान गतिविधियां बनाने या उन्हें करवाने में लग जाता है। गतिविधि करवाना ही अपने आप में शिक्षा का उद्देश्य बन जाता है। अधिकतर हम ''बाल केन्द्रित गतिविधि आधारित, आनंदमयी शिक्षा'' की बात करने लगते हैं। हर व्यक्ति जो किसी भी क्षेत्र में ज्ञान के बारे में कुछ समझता है, जानता है कि ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया में काफी परिश्रम लगता है; आनंद का एहसास तो केवल उस परिश्रम के बाद ही होता है। इस तरह की गतिविधि आधारित शिक्षा में हम शिक्षा के उद्देश्य व नैतिकता के बारे में कोई प्रश्न नहीं पूछते। जब गतिविधियों से हम ऊब जाते हैं और उनका कोई विशेष परिणाम नहीं देखते तो हमारे शिक्षाविद् हमें अच्छी किताबें बनाने की तरफ ले जाते हैं। यह कहना शुरू हो जाता है कि यदि पठन सामग्री अच्छी होगी तो शिक्षा स्वयं अच्छी हो जायेगी। ना केवल हम सीखने व सिखाने वाले से दूर हो जाते हैं बल्कि उद्देश्यों व नैतिकता को भी दूरअंदाज कर देते हैं। हमारी नैतिकता इसी बात तक सीमित हो जाती है कि किताबों में ऐसी कहानियां या कविताएं हों जिनके अंत में कोई उपदेश लिखा जा सके। उदाहरण के लिए ''जैसे को तैसा''। पठन सामग्री जब सार्थक होती नहीं दिखती तो हमें लगता है कि हमें शिक्षक–प्रशिक्षण के बारे में कुछ करना चाहिए। शिक्षा को इस तरह से टुकड़ा–टुकड़ा कर देखने से अच्छी शिक्षा का सपना संभव नहीं।

डॉ. राधाकृष्णन आयोग (1948–49) के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक आवश्यकता समन्वय की है। इस कमीशन ने यह भी कहा कि क्रांतिकारी राजनैतिक बदलावों की अपेक्षा जो प्रश्न शिक्षा के क्षेत्र में पूछे जाते हैं वे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। सदियों से चली आ रही परंपराओं व मान्यताओं पर प्रश्न चिह्न लगाना, पाठशाला एवं विश्वविद्यालयों में ही संभव है। यदि हमें नए रास्ते खोजने हैं तो हमें उन दार्शनिकों, कलाकारों व वैज्ञानिकों की बात सुननी पड़ेगी जो शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। हमें यह भी कोशिश करनी पड़ेगी कि वे स्वतंत्रता एवं निडरता से नए–नए सवाल उठाते रहें और शोध करते रहें। डॉ. राधाकृष्णन आयोग ने यह भी कहा कि अपनी प्राचीन मान्यताओं एवं उपलब्धियों के गुणगान करने की अपेक्षा उन पर विश्लेषणात्मक, बौद्धिक प्रश्न उठाने का साहस केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही हो सकता है। और यह तभी संभव है जब भविष्य की एक सुसंगत परिकल्पना, समेकित जीवन की छवि एवं ज्ञान के विभिन्न पहलुओं का समन्वय हो सके। हमें सूचनाओं, ज्ञान एवं विवेक तीनों की आवश्यकता है। लेकिन विवेक रहित सूचनाएं एवं ज्ञान अच्छी शिक्षा के लक्षण नहीं हो सकते। राधाकृष्णन आयोग टी.एस. एलीयेट की कुछ पंक्तियों में इस बात को कहने की कोशिश करता है। इनका टूटा–फूटा अनुवाद कुछ इस तरह से है–

वो विवेक कहां जो हमने ज्ञान में खो दिया,
वो ज्ञान कहां जो हमने सूचनाओं में डूबो दिया,
बीस सदियों की इस यात्रा ने,
हमें खुदा से दूर कर,
ख़ाक में मिला दिया।

यदि विवेक को शिक्षा का मध्य बिंदु मान लिया जाए तो अच्छी–बुरी शिक्षा की बात करने की शायद आवश्यकता न रहे। विवेकपूर्ण शिक्षा की परिभाषा एवं व्याख्या करने लगे तो शायद कई ग्रंथ चाहिए। ऐसे कई ग्रंथ लिखे भी जा चुके हैं। लेकिन फिर भी एक–दो ऐसे पहलुओं की बात करना शायद यहां सार्थक होगा जिन्हें हम भूल चुके हैं। विवेकपूर्ण शिक्षा का एक लक्षण निश्चित रूप से सृजनात्मकता है। सृजनात्मकता का एक पहलू रस, हंसी, हाजिर–जवाबी एवं अनेकार्थ शब्दों से खिलवाड़ है। हमारी पढ़ाई–लिखाई एवं पाठशालाओं से इस पक्ष को दूर ही रखा जाता है। आजकल यह आम बात है कि बच्चे हिंदी और अंग्रेजी साथ–साथ पढ़ते हैं लेकिन फिर भी शायद ही कभी बच्चों का ध्यान उन विसंगतियों की ओर ले जाया जाता हो जो कि अंग्रेजी के ''more'' और हिन्दी के ''मोर'' या अंग्रेजी के ''shore'' और हिंदी के ''शोर'' से पैदा हो सकती हैं। इसी तरह लंबे चुटकुले जिनमें घटनाक्रम का एक ऐसा सिलसिला होता है जिससे सुनने वाले इस बात के लिए उत्सुक होते हैं कि निष्कर्ष क्या होगा? कई तरह के निष्कर्ष संभव होते हैं। लेकिन चुटकुले में निष्कर्ष (punch line) ऐसा होता जो कि अपेक्षित निष्कर्ष से ठीक उल्टा होता है। वी.एस. रामाचन्द्रन एवं सांद्रा ब्लेकस्ली ने अपनी किताब ''फैंटम्ज़ इन द ब्रेन'' (हॉर्पर कॉलिंस 1998/2009) में हंसी व हाज़िर–जवाबी एवं सृजनात्मकता का गहरा विश्लेषण किया है। उनका मानना है कि हंसना भी भाषा, गणित एवं संगीत की तरह शायद अन्तर्जात है एवं हमारे क्रमिक दिमागी विकास का आवश्यक अंग है। वे यह भी कहते हैं कि हम यह नहीं कह सकते कि 'खाना बनाना' अंतर्जात है क्योंकि हर समाज खाना भी बनाता है। खाना हम इसलिए बनाते हैं क्योंकि हम खाने के बिना जिंदा नहीं रह सकते। हंसने के बिना तो जिंदा रहा जा सकता है। अपनी पुस्तक में वे कहते हैं कि ''हंसना और मजाक शायद सृजनात्मकता का पूर्वाभ्यास (dress rehearsal) है और यदि ऐसा है तो चुटकुले, अनेकार्थी शब्द और मज़ाक और हाज़िर–जवाबी के अलग–अलग रूप हमारे विद्यालयों के औपचारिक पाठ्यक्रम का हिस्सा होने चाहिए (पृ. 206)।'' इस तरह की सृजनात्मकता में सोचना–समझना, विश्लेषण करना, तर्क देना, प्रश्न पूछना एवं किसी निष्कर्ष पर पहुंचना सब शामिल है।

विवेकशील शिक्षा के बारे में एक अन्य प्रश्न है कि किसी भी परिस्थिति में किस निर्णय को नैतिक व विवेकशील माना जाएगा। इस बात का उत्तर शायद इमेन्यूल कांत ने अपने 1785 में दिए गए अनिवार्य विधान (categorical imperative) में दे दिया था। इनका मानना था किसी भी परिस्थिति में यदि अलग–अलग लोग तार्किक दृष्टि से निर्णय लें तो वे एक से ही मुकाम पर पहुंचेंगे। उनके अनुसार आपके किसी भी निर्णय लेने और उस पर आचरण करने का विधान यह होना चाहिए कि आप यह मान कर चलें कि जो आप कर रहे हैं, वह एक सार्वभौमिक विधान बनने की क्षमता रखता हो। यदि हम सृजनात्मकता एवं कांत के अनिवार्य विधान को साथ लेकर चलें तो शायद अच्छी/विवेकपूर्ण शिक्षा का निर्माण हो सके। और शिक्षा एक छोटा प्रयास होते हुए भी व्यक्ति और समाज को बदलने में हमारी सहायता कर सके।

रमा कान्त अग्निहोत्री : दिल्ली विश्वविद्यालय में भाषा विज्ञानी के रूप में लंबे समय तक कार्य करने के बाद आजकल विद्या भवन से संबद्ध। विद्या भवन तथा अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की संयुक्त पत्रिका 'लैंग्वेज एंड लैंग्वेज टीचिंग' के संपादक हैं।